सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की कितनीक परिणति शुद्ध होती है, उसे ऐसा अहिंसाव्रत का, जो पाँच महाव्रत का विकल्प, शुभ उपयोगरूप प्रयत्न होता है, उसे यहाँ अहिंसाव्रत कहा जाता है। व्यवहार अहिंसाव्रत। निश्चय से तो वह राग है, वह हिंसा है, परन्तु व्यवहार से उसे अहिंसा कहा जाता है। यह पाँच महाव्रत की बात है।

कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।
तस्सारंभ-णियत्तण-परिणामो होइ पढम-वदं।।५६।।

रे जानकर कुल योनि, जीवस्थान मार्गण जीव के।
आरम्भ इनके से विरत हो प्रथम व्रत कहते उसे॥५६॥

टीका : यह, अहिंसाव्रत के स्वरूप का कथन है। कुलभेद,... जीव के कुलभेद। पहले ४२ गाथा में आ गये हैं। **योनिभेद,...** उत्पत्ति-स्थान के भेद और **जीवस्थान के भेद...** चौदह **और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२ वीं गाथा की टीका में ही) प्रतिपादित किये गये हैं;...** कि जीव में नहीं हैं, ऐसा उसमें आया था। **कुलभेद, योनिभेद, जीवस्थान के भेद और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२ वीं गाथा की टीका में ही)....** यह कहा था कि जीव में वे नहीं है। वह यहाँ पर्याय में वे भेद हैं - ऐसा बतलाते हैं।

यहाँ पुनरुक्तिदोष के भय से प्रतिपादित नहीं किये हैं। यहाँ पाठ में होने पर भी विस्तार नहीं किया है। वहाँ विस्तार हो गया, इसलिए (यहाँ विस्तार नहीं किया है)।

'**कुलजोणिजीवमग्गणठाणा**' यह शब्द वहाँ ४२वीं गाथा में था। ४२ गाथा है न? वहाँ यह शब्द है '**कुलजोणिजीवमग्गणठाणा**' वहाँ यह शब्द था। वहाँ विस्तार किया था। यहाँ नहीं किया। **वहाँ कहे हुए उनके भेदों को जानकर,...** देखो! जानकर - ऐसा कहते हैं। उसे जानना तो चाहिए। वस्तु में नहीं है, परन्तु पर्याय में है, उसे जानना चाहिए - ऐसा कहते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहते हैं न?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की बात नहीं परन्तु... है, ऐसे जानने की बात नहीं? आश्रय इसका (स्वभाव का) लिया, तथापि पर्याय में ऐसे भेद हैं, उन्हें जानना।

मुमुक्षु : परन्तु हेय कहने के बाद उसे ऐसे जाना या ऐसे जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार से जानना - ऐसा आता है या नहीं? हेय को जाने, तब हेय होता है या जाने बिना हेय किस प्रकार हो? हेय, ज्ञेय। यह पर्याय में हेय है - ऐसे जाने बिना उसका लक्ष्य कैसे छोड़े? - ऐसा कहते हैं। उन्हें जानकर। देखो! आया है न? सबमें आया है। योगसार में आया नहीं? छह द्रव्यों को प्रयत्न से जानना। छह द्रव्य तो पर है, परन्तु व्यवहार से अपनी पर्याय में उनका ज्ञान होता है, इसलिए उन्हें जानना। जानने में कहाँ आपत्ति है? व्यवहार जाना हुआ। व्यवहार जानने में आवे। व्यवहार का विषय है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो धर्म होने के बाद की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की यह बात है न?

मुमुक्षु : यह धर्म हुए पहले की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले की यहाँ बात ही नहीं है। यहाँ तो आत्मा का ऐसा भान है, वहाँ ऐसी पर्याय और भेद को जानना। धर्म होने के पहले की बात यहाँ है ही नहीं। ऐई! उसे पर्याय जानने में आवे या नहीं? पर्याय में जानने में नहीं आवे? द्रव्य और पर्याय दो का ज्ञान करे। आदरणीय द्रव्य, पर्याय जाननेयोग्य। ऐई! अटपटा है, इसलिए यह सब भांजगड़ (सिरपच्ची) खड़ी हुई है न? अभी यह तो कहेंगे। **उनके भेदों को जानकर,...** जानने में न आवे? मार्गणा के भेद पर्याय में हैं। जीव किस-किस अवस्था में है। किस जीव के

स्वरूप भेद में भेद कहाँ है ? कुल कौन सा है ? योनि क्या ? यह जानने में न आवे ? जानने में तो सब आता है।

उनकी रक्षारूप परिणति ही अहिंसा है। यह रक्षा शब्द रखा है। **उनकी रक्षारूप परिणति...** अर्थात् उन सब जीवों को न मारने के परिणाम, वह परिणति, वह अहिंसा-व्यवहार-शुभोपयोग।

मुमुक्षु : उनकी रक्षा की जा सकती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न ? रक्षा का अर्थ यह। हो सकती है कहाँ ? उन्हें नहीं मारने के परिणाम, उन्हें यहाँ रक्षा कहने में आता है। परिणाम। उन्हें मार सकता है या जिला सकता है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। उन्हें नहीं मारने के परिणाम। देखो ! कहते हैं। **अहिंसा है।** व्यवहार, हों ! यह शुभ उपयोग।

उनका मरण हो या न हो,... लो, प्रश्न है ? मरण हो या न हो, उसके साथ कुछ नहीं है। वह तो पर है। **प्रयत्नरूप परिणाम बिना,...** शुभभाव में प्रयत्न बिना **सावद्यपरिहार (दोष का त्याग) नहीं होता;...** ऐसा कहते हैं। दूसरे को न मारना, यह शुभभाव का प्रयत्न है। वह मरे, न मरे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। यह तो साथ में लिख दिया, परन्तु शुभपरिणाम का प्रयत्न है, वह सावद्ययोग का त्याग है। उस **प्रयत्नरूप परिणाम बिना,...** शुभ में प्रयत्न बिना अशुभ के सावद्ययोग का त्याग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इसीलिए प्रयत्नपरायण को... देखो ! शुभभाव में **प्रयत्नपरायण को हिंसापरिणति का अभाव होने से...** उसे सावद्य के अशुभभाव का त्याग होने से **अहिंसाव्रत होता है।** कहो, समझ में आया ? उसे अहिंसाव्रत-शुभभाव होता है। यह व्यवहार, निश्चयसहित होवे, उसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा बतलाते हैं और व्यवहारनय के अर्थ में तो ऐसा भी कहते हैं, यह व्यवहार का प्रयत्न है, उतना अशुभ टालता है न ? सावद्ययोग का त्याग, उतना शुभ में प्रयत्न है। है पुण्य-बन्धन, है शुभोपयोग। निश्चय से तो स्वरूप की हिंसा है परन्तु व्यवहार से सावद्ययोग का त्याग है, इसीलिए व्यवहार से उसे अहिंसा परिणाम कहा गया है, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : उलझन तो अवश्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझन जरा भी नहीं है। सीधा मार्ग है परन्तु इसने विपरीत माना है। जहाँ वस्तु-आत्मा का भान है, अनुभव है कि मैं तो आनन्द हूँ, उसकी दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ और आनन्द में कितनी ही लीनता भी हुई है, उसे ऐसा शुभभाव प्रयत्न से होता है। इस प्रकार का शुभ का प्रयत्न है न ? उसे यहाँ व्यवहार अहिंसाव्रत कहने में आता है। ऐसा भाव मुनि को छठे गुणस्थान में होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। समझ में आया ?

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री नमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए ११९ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

देखो ! वापस निश्चय डालते हैं।

अहिन्सा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म-परमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम-करुणो ग्रन्थ-मुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृत-वेषोपधि-रतः।।

श्लोकार्थ : जगत् में विदित है... यहाँ तो कहते हैं, लो ! **जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है।** यह भाव अहिंसा की बात है। राग की उत्पत्ति न होना और वीतरागपर्याय की उत्पत्ति होना, यह अहिंसा जगत-प्रसिद्ध है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? चलता है वह अहिंसाव्रत का, उसमें नीचे वापस यह लिखा। आत्मा में जितने अंश में राग की उत्पत्ति होती है, उतने अंश में तो हिंसा ही है और जितने अंश में स्वभाव शुद्ध आनन्द के आश्रम वीतराग अकषाय की परिणति होती है, वह अहिंसा है।

जगत् में विदित है कि जीवों की अहिंसा, परमब्रह्म है। उसमें परम आनन्द है। वह परम ब्रह्म आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का जैसा परम ब्रह्मस्वरूप है, ऐसी जहाँ परिणति / पर्याय / वीतरागीदशा प्रगट हुई, वह परम ब्रह्मस्वरूप है। अहिंसा की अवस्था, रागरहित की दशा, हों ! यह शुभ की बात नहीं है। जीव अर्थात् जीव स्वयं भी आया न ? समझ में आया ? **जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है।** वह परजीव की अहिंसा अकेला न मारना, वह नहीं। परम अहिंसा है, परम ब्रह्म है। भगवान आत्मा... यह स्पष्टीकरण करेंगे।

जिस आश्रम में परिग्रह का एक अंश नहीं, वहाँ अहिंसा है, ऐसा कहते हैं। मुनि को आत्मज्ञान अनुभवसहित चारित्र की दशा जो अन्तर वर्तती है, उन्हें परिग्रह का कण

लेने का विकल्प नहीं है। वह विकल्प होवे तो वह हिंसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोगों को बराबर शुद्धभाव अधिकार कहकर व्यवहार (चारित्र अधिकार) कहेंगे। फिर प्रतिक्रमण आदि निश्चय कहेंगे। **जीवों की अहिंसा, परम ब्रह्म है। जिस आश्रम की विधि में...** देखो! **लेश भी आरम्भ है,...** गृहस्थाश्रम में भले पंचम गुणस्थान में हो, परन्तु वहाँ अभी राग है। वस्त्र, पात्र रखने का इत्यादि-इत्यादि राग है, वह हिंसा है। **जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरम्भ है, वहाँ (उस आश्रम में, अर्थात् सग्रन्थपने में) अहिंसा नहीं होती।** देखो! वस्त्र-पात्र रखने का जहाँ भाव है, वहाँ अहिंसा नहीं होती। वह हिंसा है। आहाहा! समझ में आया?

जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरम्भ है, वहाँ (उस आश्रम में, अर्थात् सग्रन्थपने में) अहिंसा नहीं होती। देखो! पंचम गुणस्थान में श्रावक को पूर्ण अहिंसा नहीं है। उसे अभी रागभाव है। आरम्भ का, वस्त्र-पात्र रखने का, स्त्री, परिवार इत्यादि राग है, वह हिंसा है। वहाँ अहिंसा नहीं है। देखो! **इसलिए उसकी सिद्धि के हेतु, (हे नमिनाथ प्रभु!) परम करुणावन्त ऐसे आपश्री ने दोनों ग्रन्थ को छोड़ दिया...** अन्दर में से राग छोड़ा और बाहर में से वस्त्र-पात्र, वस्तु छोड़ी। व्यवहार। ऐसा जो मुनिपना, वहाँ अहिंसा है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिस आश्रम में राग का अंश नहीं और परिग्रह में वस्त्र-पात्र भी नहीं, ऐसे आश्रम में अहिंसा होती है। इसीलिए भावलिंगी सन्त, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी, तदुपरान्त उसमें स्थिरता, वीतरागता प्रगटी है, उन्हें भावहिंसा नहीं है, राग का भावपरिग्रह नहीं है और वस्त्र-पात्र का द्रव्यपरिग्रह भी नहीं है। आहाहा!

इसलिए उसकी सिद्धि के हेतु, (हे नमिनाथ प्रभु!) परम करुणावन्त ऐसे आपश्री ने... देखो! इसमें अपनी करुणा है। **दोनों ग्रन्थ को छोड़ दिया...** वस्त्र-पात्र भी छोड़ा और राग भी छोड़ा। **(द्रव्य तथा भाव, दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़कर, निर्ग्रन्थपना अङ्गीकार किया)** देखो! जिसमें राग का लेश भी अंश नहीं। वह वास्तव में वीतरागदशा में सातवें गुणस्थान में... समझे? राग का अंश नहीं, ऐसी जो दशा, वह निर्ग्रन्थ दशा और वह अहिंसादशा, वह अहिंसकदशा है। आहाहा! देखो न व्याख्या।

विकृत वेष... साधु को वस्त्रादि रखना, वह विकृत वेष है; वह सच्चा वेष नहीं है। **तथा परिग्रह में रत न हुए।** राग में रत नहीं हुए और बाहर के वेष में विकृत में भी रत नहीं हुए। आहाहा! देखो! यह अहिंसाव्रत के शुद्ध उपयोग की व्याख्या चलती है। उसमें यह

लिखा है। भगवान आत्मा रागरहित मुनि को जहाँ वीतरागदशा प्रगट हुई है, उस आश्रम में अहिंसा है। जहाँ राग का आरम्भ नहीं और बाहर राग के निमित्त वस्त्र-पात्र, ऐसा परिग्रह का संग-सम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानी को बन्ध नहीं है, राग उसका नहीं है। ऐई! दृष्टि की अपेक्षा से जहाँ परिणमन पर से भिन्न पड़ गया, उस अपेक्षा से (यह बात है)। जैसे शरीर पर, वैसे राग पर परन्तु स्थिरता की अपेक्षा जहाँ आवे, वहाँ पंचम गुणस्थान में भी राग-भाग है, वह हिंसा है, ऐसा कहते हैं। उस आश्रम में अहिंसा पूर्ण नहीं है। आहाहा! कथन की पद्धति देखो! समझ में आया? यहाँ तो चारित्र की व्याख्या लेनी है या नहीं? अन्तरस्वरूप में आनन्द में रमणता, उसकी भूमिका में राग का अंश नहीं, उसे अहिंसा जगत प्रसिद्ध-विदित कहने में आता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, वह बात जगत प्रसिद्ध है।

मुनि अनालम्बी अपरिग्रही। आहाहा! नग्न मुनि, बाहर में नग्न है, अन्दर में राग का कण नहीं। जरा सा यह संज्वलन का कण है ऐसा... अकषाय परिणति ही जिन्हें उग्र है, उन्हें यहाँ अहिंसा कहने में आता है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। उसे अपनी कल्पना से फेरफार करके जगत के समक्ष रखना, वह कोई मार्ग नहीं है। यहाँ तो ग्यारह प्रतिमावाले को भी अभी राग है। है न? पंचम गुणस्थान है न? वहाँ अभी उस आश्रम में पूर्ण अहिंसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ नमिनाथ भगवान की बात चलती है। हे प्रभु! आपने तो अन्तर में वीतरागदशा प्रगट की और बाह्य में नग्नदशा। विकृत वेश रहा नहीं। ऐसी अपरिग्रहदशा को यहाँ अहिंसा कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? प्रयत्न परायण, लो! इस अपेक्षा से शुभभाव में इतना पुरुषार्थ है न? अशुभ में अन्तर उल्टा, परन्तु इसमें जरा कम है। परन्तु है न। शुभ में विशेष प्रयत्न है परन्तु इसमें भी अकेला वीर्य है न शुभ में? ऐसा कहते हैं। परन्तु है, वह व्यवहार अहिंसा है। जिसे निश्चय अहिंसा प्रगट हुई हो, उसे ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहार अहिंसा कहने में आता है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द की-शुद्ध की दशा है ही नहीं, उसे यह व्यवहार नहीं हो सकता। उसे व्यवहार ही नहीं है। व्यवहार कहाँ से आया? जगे बिना, निश्चय बिना व्यवहार किसे कहना?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे पाँचवें में लेंगे। पाँचवें व्रत में निरपेक्ष शब्द है सही न? पाठ में। निर्विकल्प भावना अर्थात् पंच महाव्रत में अन्दर दृष्टि, ज्ञान, स्थिरता का निरपेक्षपना। पाँचवें में निरपेक्ष शब्द आता है। वहाँ नीचे स्पष्टीकरण है। यहाँ भी स्पष्टीकरण किया न? देखो न, कहाँ शब्द है वह? प्रयत्न-प्रयत्न है न?

मुनि को (मुनित्वोचित) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता हुआ जो... अन्दर शुद्ध वीतरागदशा तो है। आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की कितनी ही परिणति तो है। **जो (हठरहित) देहचेष्टादिकसम्बन्धी शुभोपयोग, वह व्यवहार प्रयत्न है।** हठरहित अर्थात् उस प्रकार से शुभभाव वहाँ सहज होता है। **[शुद्धपरिणति न हो,...]** लो! पाँचवें में विशेष स्पष्टता है। शुद्धपरिणति न हो, जहाँ स्व भगवान आत्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागीदशा न हो, **[वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;...]** वहाँ तो हठ है, सहज नहीं। **[वह शुभोपयोग तो व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता।]** कहो, समझ में आया?

ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति की जो निर्विकल्पदशा-शुद्धपरिणति प्रगट हो, वहाँ आगे वह शुभोपयोग का प्रयत्न है, वह सहज उस प्रकार का भूमिका में भाव होता है। हठरहित (होता है) और जहाँ शुद्ध की परिणति का भान ही नहीं, आत्मा आनन्दस्वरूप का जहाँ आश्रय लिया नहीं, आश्रय लिए बिना की दशावाला अकेला शुभोपयोग तो हठवाला है। उस भूमिका में उसे हो, आवे - ऐसा वहाँ नहीं है। वह हठवाला है। उस शुभोपयोग को व्यवहार भी नहीं कहा जाता। **व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता।** लो। कहो, समझ में आया या नहीं? कान्तिभाई! यह भी निश्चय के साथ व्यवहार आया, इसलिए झगड़ा उठा। कहते हैं, जो व्यवहार होता है। व्यवहार होता है तो निश्चय होता है, यह बात यहाँ कहाँ है। यहाँ तो ऐसे निश्चय की दशा की परिणति हो, तब ऐसा व्यवहार-शुभोपयोग होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। शुभ उपयोग करनेयोग्य है, यह बात भी कहाँ है? आता है, होता है, होता है।

मुमुक्षु : उसे करता है, ऐसा कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे करता है, वह तो व्यवहारनय से पालता है, ऐसा कहा जाता है।

व्यवहार अहिंसाव्रत पालता है। राग को पाले? परन्तु व्यवहारनय का कथन अहिंसा, उस प्रकार से ही कहने में आता है। कहो, भगवान का दृष्टान्त दिया, ठीक। हे प्रभु! आपने तो निर्ग्रन्थदशा अन्तर में और बाह्य में दोनों की हैं। वस्त्र का वेश, वह विकृत वेश है। वह मुनि का वेश नहीं है। सन्त की दशा वह व्यवहार से भी नहीं है। आहाहा! जिसे वस्त्र के प्रति विकल्पदशा छूट गयी है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की परिणति सहित जिसे ऐसा व्यवहार अहिंसा का शुभ प्रयत्न होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है, ऐसा कहते हैं।

जहाँ निश्चयस्वरूप का भान नहीं, कि यह व्यवहार। वहाँ व्यवहार कहना किसे? व्यवहार तो सहचर। निश्चय की श्रद्धा-ज्ञान की शान्ति के साथ सहचर। साथ में हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु यहाँ साथवाला निश्चय तो जगा नहीं, वहाँ सहचर कहना किसे? समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में सहचर आता है न? सहचर—साथ में होता है, इसलिए उसे व्यवहार कहने में आता है परन्तु किसके साथ में? निश्चय है नहीं और साथ में चलता है। परन्तु किसके साथ में? समझ में आया? लोग तो बस, यह अहिंसाव्रत और यह व्रत है, वह चारित्र ही है, बस एक ही बात सिद्ध करते हैं। यहाँ तो शुभ उपयोग स्पष्ट शब्द लेंगे। ये सब शुभ उपयोग है। समझ में आया? परम्परा से आगे कहेंगे। स्पष्टीकरण करेंगे।

मुमुक्षु : ११७ पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ११७ पृष्ठ? कहीं है अवश्य। नीचे न? टीका में। '**चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही परम्परा से पंचम गति के हेतुभूत ऐसा पाँचवाँ व्रत है।**' परम्परागत तो कहा परन्तु शुभ उपयोग शब्द नहीं है। परित्याग ही। **परम्परा से पंचम गति के हेतुभूत ऐसा पाँचवाँ व्रत है।** अर्थ में है देखो! उसमें अर्थ में है। **सर्व परिग्रहों के त्याग (सर्व परिग्रह त्याग सम्बन्धी शुभभाव)...** देखो! है? ६० गाथा। सर्व परिग्रह का त्याग, देखा? यहाँ ऊपर कहा न। **निरपेक्ष भावनापूर्वक (अर्थात् जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं, ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावना सहित...)** सहित। तब सर्व परिग्रह का त्याग वह शुभभाव। यह पाठ का पुकार है। ६०वीं गाथा। ६० वीं, हों! ६० गाथा का अर्थ।

निरपेक्ष भावनापूर्वक... देखो! ओहो! जिसे पर की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा निर्मल

परिणमन हुआ है। **(ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित...) सर्व परिग्रहों का त्याग...** यह शुद्धपरिणतिसहित, शुभोपयोग वह पाँचवाँ महाव्रत है, ऐसा यहाँ अहिंसा आदि शुभभाव सबको गिनना। समझ में आया? आहाहा!

श्लोक-७६

तथाहि ह्न

और, (५६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

त्रसहतिपरिणामध्वान्तविध्वन्सहेतुः,
सकल-भुवन-जीवग्राम-सौख्यप्रदो यः।
स जयति जिन-धर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां,
विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः ।।७६।।

(हरिगीतिका)

त्रसघात परिणतिरूप तम के नाश का जो हेतु है।
जो लोक के सम्पूर्ण जीवों के लिए सुखरूप है॥
एकेन्द्रियों के विविध वध से जो बहुत ही दूर है।
जिनधर्म नित जयवंत जो आनन्द सागर पूर है॥

[श्लोकार्थ :—] त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है, स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के विविध वध से जो बहुत दूर है और सुन्दर सुखसागर का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है।

श्लोक-७६ पर प्रवचन

और, (५६ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

त्रसहतिपरिणामध्वान्तविध्वन्सहेतुः,
सकल-भुवन-जीवग्राम-सौख्यप्रदो यः।
स जयति जिन-धर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां,
विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः ।।७६।।

त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है,... कौन? जैनधर्म। जैनधर्म अर्थात् अज्ञान और राग को जीतकर वीतरागता प्रगट करना, वह जैनधर्म है। **त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है,...** वीतरागधर्म। वीतरागधर्म अर्थात् आत्मा की वीतरागी परिणति। वह जैनधर्म, वह जैनशासन है। पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा की स्व-आश्रय की शुद्धपरिणति को यहाँ जैनधर्म और जैनशासन कहने में आता है।

सकल लोक के जीव समूह को सुखप्रद है,... वीतरागभाव सभी जीवों को आनन्ददायक है, ऐसा कहते हैं। जिन अर्थात् आत्मा का वीतरागस्वरूप। उसके आश्रय से होनेवाली परिणति, वीतराग परिणति। रागादि नहीं - ऐसा जो जैनधर्म, उसे त्रसघात के नाश का, अन्धकार के नाश का हेतु है। और **स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के...** भी मारने के परिणामरहित है। **विविध वध से जो बहुत दूर है...** देखा! एक पानी की बूँद में असंख्य जीव हैं। पानी की बूँद... असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में एक-एक जीव। उनके घात से भी जैनधर्म दूर वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? छह काय ले लिए न? त्रस और एकेन्द्रिय, (ऐसे) छह काय ले लिए।

पानी की एक बूँद, अग्नि का एक चिंगारी, उसमें असंख्य जीव हैं। इस पानी के दस-दस सेर, अध मण गरम पानी में, एक-एक पानी की कणी में असंख्य जीव। मुनि के लिए वह पानी बनावे और मुनि ले, वह मुनि ही नहीं है। व्यवहार से मुनि नहीं, हों! निश्चय से तो है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो प्रभु! तेरा मार्ग, त्रस और एकेन्द्रिय जीव के घात से दूर-दूर मार्ग है। आहाहा!

और सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,... आहाहा! वह राग है, वह तो दुःख है और उससे भिन्न भगवान आत्मा की परिणति, शुद्ध वीतरागस्वभाव का आश्रय लेकर (हुई), अपना निज वीतरागस्वभाव। वीतरागपरिणति जो खड़ी हुई, वह **सुन्दर सुखसागर का जो**

पूर है,... अज्ञानी ने सुख की कल्पना की, वह तो दुःख है। यह तो **सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,...** आहाहा! क्या कहते हैं। समझ में आया? जैनधर्म उसे कहते हैं कि जो आनन्द सागर भगवान आत्मा में से वीतरागी आनन्द की दशा प्रगट की, उसे जैनधर्म कहते हैं। आहाहा! है या नहीं इसमें? देखो! कहाँ? १५वीं गाथा में ऐसा कहा कि शुद्ध उपयोग। भावश्रुत उपयोग, वह जैनशासन है। समयसार की १५ वीं गाथा। भावश्रुत उपयोग, जिसमें राग का कण नहीं। वीतरागी भावश्रुत उपयोग, वह जैनशासन है। यहाँ कहते हैं कि जैनधर्म कहो या जैनशासन कहो।

जैनधर्म क्या है? कि अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति का पूर अन्दर प्रगट हो, (वह जैनधर्म है)। आहाहा! यह महाव्रत का विकल्प भी राग है, ऐसा कहकर यहाँ वापस निकाल दिया। होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं परन्तु अन्तर में यह राग जो आता है, वह जैनधर्म नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई! महाव्रत के परिणाम का अहिंसा का विकल्प, वह जैनधर्म नहीं है। उसे ऐसा व्यवहार हो, इतना ज्ञान कराते हैं, परन्तु वह जैनधर्म नहीं है। ऐई! आहाहा! क्योंकि राग है, वह दुःख है। अहिंसा महाव्रत का विकल्प—व्यवहार अहिंसा, वह भी दुःख है; जैनधर्म नहीं। बीच में होता है, उसका ज्ञान कराते हैं। आहाहा!

जैनधर्म अर्थात् कोई पक्ष नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं; वह तो वस्तु का स्वरूप है। 'जिन सो हि है आत्मा' वीतरागभाव से भरपूर अकषायस्वभावरूप आत्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता प्रगट हुई, वह सुख का पूर अर्थात् वे तीनों सुखरूप हैं, ऐसा कहते हैं। तीनों दुःखरूप नहीं हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों सुखरूप हैं। लोग कहते हैं न कि अरे! चारित्र तो महा (कठोर) ग्रास है। अरे! चल.. चल.. तुझे भान नहीं है। दूध के दाँत से... क्या कहते हैं? लोहे के चने चबाना। बापू! क्या चारित्र दुःखरूप है? सम्यग्दर्शन दुःखरूप है? सम्यग्ज्ञान दुःखरूप है।

कहते हैं, **सुन्दर सुखसागर का जो पूर है,...** आहाहा! किस प्रकार बात की है! आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर, ध्रुव है। उसका आश्रय लेकर, अवलम्बन लेकर उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द की दशा- श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीनों अतीन्द्रिय आनन्द की दशा है। तीनों सुखरूप दशा है। तीनों में आनन्द है। ऐसे **सुखसागर**

का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ऐसा जैनधर्म जगत में वीतराग परिणति के परिणमनेवाले के पास जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों की वाणी ठेठ वीतरागता को पहुँचावे ऐसी है। ऐसी बात...! ऐसी बात इनके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर मुनियों के अतिरिक्त ऐसा कथन, ऐसी बात कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में नहीं तो अन्यमत में तो कहाँ से होगी? आहाहा! लोगों को यह कहते हैं तो ऐसा लगता है कि यह पक्ष की बात है। अरे! पक्ष की बात नहीं, भगवान! यह वस्तु ही स्वयं वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसमें त्रिकाल चारित्रगुण है न? वीतरागभाव -स्वरूप है और श्रद्धागुण है, वह भी वीतरागस्वरूप है, ज्ञानगुण है, वह भी वीतराग निर्दोषस्वरूप है। निर्दोषस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो। ऐसा वीतराग भगवान आत्मा, उस पर दृष्टि पड़ने से, उसका ज्ञान होने पर, उसमें स्थिरता होने से जो दशा प्रगट होती है, निश्चय सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, वह तो सुख के आनन्द की दशावाली दशा है। आहाहा! उसे जैनधर्म कहते हैं।

अहिंसाव्रत में वापस यह लिखा है, बतलाया अवश्य है। रागादि जाननेयोग्य है परन्तु वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! जितनी अन्दर में रागरहित अहिंसारूप परिणति सुखरूप हुई, उतना जैनधर्म है। कहो, शान्तिभाई! बराबर है यह? तो फिर ये महाव्रत-फहाव्रत में यह और कहाँ डाला? ज्ञान कराया है कि है, परन्तु जैनधर्म उसे कहते हैं कि जिसमें अकेली वीतराग परिणति खड़ी हो। जिसमें राग आया, वह भी वास्तविक जैनधर्म नहीं है। वह तो उपचारिक धर्म, व्यवहार जैनधर्म है। निश्चयधर्म, वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! जैनधर्म के भी दो प्रकार हैं, निश्चय और व्यवहार। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म है तो दोनों धर्म से लाभ होगा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ की बात कहाँ है? एक ही धर्म से लाभ है। वीतरागी जैनधर्म दशा। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, उस एक से ही लाभ है। दूसरा होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। ज्ञान कराते हैं कि व्यवहारनय जानने योग्य है या नहीं?

मुमुक्षु : ....मुश्किल से....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुश्किल से आया, वहाँ अन्दर ही अन्दर उड़ा दिया। दोनों में

उड़ाया। समन्तभद्राचार्य का आधार देकर उड़ाया, स्वयं ने उड़ाया। दुनिया, दुनिया का जाने, तुझे क्या काम का? तुझे तो आत्मा के साथ काम है, कहते हैं। शुभविकल्प हो, कहते हैं कि वह तो जाननेयोग्य है। वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का जिसका स्वभाव, बस उसके साथ तुझे काम है। ओहोहो! कथनी भी देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, हों! इस पुस्तक की गाथा कुन्दकुन्दाचार्यदेव की, परन्तु टीका करनेवाले मुनि हैं, आचार्य नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव। अमृतचन्द्राचार्य और ये सब आचार्य थे। यह (टीकाकार) तो मुनि हैं।

मुमुक्षु : आचार्य का कथन ही मानने योग्य है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! मुनि का कथन... समकिती का कथन मानने योग्य है। माननेयोग्य किसका कथन नहीं? आहाहा!

छह काय के **वध से जो बहुत दूर है...** अर्थात् उन्हें मारने का विकल्प तो नहीं, परन्तु जीलाने के विकल्प से भी यह वीतराग का मार्ग दूर है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहा न? प्रयत्न, शुभ प्रयत्न-परायण।

मुमुक्षु : यहाँ तो रक्षा की बात थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : रक्षा शब्द तो व्यवहार से आया। यहाँ वापस डाला। आहाहा!

छह काय को मारने का विकल्प तो नहीं होता, परन्तु उन्हें न मारने का विकल्प भी जिस जैनधर्म में नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यह विकल्प हो, वह व्यवहारधर्म है, पुण्य है। निश्चय जैनधर्म तो रागरहित अरागी श्रद्धा, अरागी ज्ञान और अरागी चारित्र की दशा, वह जैनधर्म है। आहाहा! **जयवन्त वर्तता है।** मुनि को स्वयं में वीतरागी परिणति है न? **जयवन्त वर्तता है।** आहाहा! कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? वह अकेला निश्चय का आता था, वहाँ जरा पकड़े। निश्चय में व्यवहार आवे और फिर व्यवहार उड़ावे। ऐई! व्यवहार वहाँ तक कहा कि प्रयत्नरूप परिणाम है। ऐई! और कहते हैं कि प्रयत्नरूप परिणाम, वह जैनधर्म नहीं है। आहाहा! व्यवहारधर्म कहने में आता है। व्यवहार कहो या पुण्य कहो। आहाहा! अरे रे! ऐसा मार्ग! निर्मलानन्द प्रभु के आश्रय से धर्म होता है, ऐसा मानना, वह व्रत है। यह तो व्रत के परिणाम आस्रव हैं। अहिंसाव्रत के परिणाम आस्रव हैं, शुभ उपयोग है, राग है।

मुमुक्षु : ऐसा कहाँ इसमें लिखा हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा ? यहाँ कहा न, कि **सुन्दर सुखसागर की...** दशा वह जैनधर्म है। अहिंसा वह शुभराग है, शुभ उपयोग है। व्रत है न ? कहो, समझ में आया ? आहाहा ! कहो, चेतनजी ! ऐसी बात वहाँ कहीं थी ?

मुमुक्षु : भूतकाल की बात कहाँ है, वर्तमान की बात करो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में भी विरोध करते हैं। अरे ! भगवान ! शान्त हो, भाई ! जो मार्ग होगा, वह रहेगा। कुछ बदलाव करने से कहीं बदलाव हो नहीं जाएगा। आहाहा ! बापू ! तेरा तत्त्व है। आहाहा ! ऐसा आता है कहीं। निज तत्त्व का कहीं आता है। सहज परमतत्त्व स्वस्वरूप, ऐसा आता है। यह ७९ वें कलश में आता है। '**सहजपरमतत्त्व स्वस्वरूपं**' आहाहा ! महा भगवान आत्मा सहज परमतत्त्व, महा परमतत्त्व ध्रुव वस्तु, वह जीव का स्व स्वरूप। वह जीव, वह आत्मा, ऐसे आत्मा का आश्रय लेकर। आश्रय लिया पर्याय ने। आश्रय दिया द्रव्य ने।

मुमुक्षु : द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता न ? स्पर्श नहीं करता और आश्रय दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ (पर्याय) ऐसे गयी, इसलिए दिया न। उसने कुछ इनकार नहीं किया कि नहीं... नहीं... इस ओर मत आ।

मुमुक्षु : उसे छुए नहीं और स्पर्श नहीं करे तो कहाँ से दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। कहो, समझ में आया ?

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' नहीं आया ? ऐई ! भूतार्थ त्रिकाली का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आश्रय करनेवाली तो पर्याय है। आश्रयदाता तो द्रव्य है। ऐई ! उसमें से निकालना पड़ेगा या नहीं '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह महासिद्धान्त है। (समयसार की) ११वीं गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है। कैलाशचन्दजी ने लिखा है, परन्तु वापस अर्थ में घुमाते हैं, मेल नहीं खाता... मेल कैसे करना, इसकी बात समझनी चाहिए। ऐसे अपनी कल्पना से करे, ऐसा कहीं चले ? यह तो अनादि के वीतराग सन्त मार्ग कहते आये हैं, परिणमते आये हैं, होते आये हैं, मुक्ति पाते आये हैं। यह कहीं किसी व्यक्ति का मार्ग है ? अनादि सन्त यह मार्ग कहते आये हैं और इस प्रकार का परिणमन करते आये हैं तथा इस प्रकार का कहते आये हैं। ओहोहो ! वाह !

विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः । अन्तिम लाईन। ठीक। चारु अर्थात् सुन्दर। शर्म अर्थात् सुख। अब्धि अर्थात् समुद्र, उसका पूर है। लो! वाह!

मुमुक्षु : जिनधर्म के विशेषण हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जैनधर्म के विशेषण हैं। आहाहा! जैनधर्म तो अतीन्द्रिय आनन्ददायक है, ऐसा कहते हैं। दायक अर्थात् बाद में दे, ऐसा नहीं। उसी समय अतीन्द्रिय आनन्द का दाता, परिणमन, उसका नाम जैनधर्म है। आहाहा! यह पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी... भले स्वयं को अमुक शैली लक्ष्य में रखकर किया हो, परन्तु किया कैसा है! (समयसार) १५वीं गाथा में कहा कि जैनशासन उसे कहना। भले वह लक्ष्य में हो और यह बात की हो। परन्तु बात तो...

भावश्रुत उपयोग अर्थात् आनन्ददायक दशा, वह जैनशासन है। आहाहा! उसमें आपदा क्या? विपदा क्या? दुःख कहाँ? आहाहा! कष्ट को सहन करना, वह जैनधर्म नहीं है – ऐसा कहते हैं। कष्ट को सहन करना अर्थात् ऐसे आकुलता लगे। यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द की दशा की परिणति प्रगट होती है। प्रवाह का पूर बहाया, कहते हैं। आहाहा! अन्तर का भाव जो भरा था। पूर्ण भरितअवस्थ। स्वभाव का सागर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के सहारे गयी, उसके आश्रय में गयी, उस परिणति को यहाँ जैनधर्म कहते हैं। स्वद्रव्य आश्रय परिणति प्रगटे, उसे जैनधर्म कहते हैं। परद्रव्य आश्रय राग हो, वह यथार्थ जैनधर्म नहीं है। निश्चय हो, वहाँ व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया?

अब चलती है अहिंसाव्रत की बात, वहाँ यह डाला है परन्तु डाले न। सुन न! व्यवहार अहिंसाव्रत का विकल्प है, वह प्रयत्न है, ऐसा तुझे बतलाया। मुनि को होता है परन्तु वह कहीं वास्तविक चीज़ नहीं है, वह यथार्थ वस्तु नहीं है। अन्तर आत्मा छह काय के घात और जिलाने के विकल्प से भी भिन्न है, ऐसा कहते हैं। छह काय के जीव को मारने के विकल्प से तो भिन्न, परन्तु उन्हें बचाने के विकल्प से (भी) जैनधर्म भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ऐसा कि जैनधर्म की अस्ति है, ऐसा कहते हैं, भाई! ऐसा कि यह कहनेमात्र जैनधर्म नहीं है। इसकी अस्ति है। आहाहा! ऐसा जैनधर्म हमारी परिणति में वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समन्तभद्राचार्य में भी

यह आया है। अहिंसा परम ब्रह्म, इसलिए वे ऐसा स्पष्टीकरण करते हैं कि छह काय की-जीव की दया, वह अहिंसा परम धर्म है। इसका अर्थ ऐसा किया है। उसकी बात कहाँ है? यहाँ तो परम ब्रह्म है। वह तो अपरम है। आहाहा! ऐसा अर्थ करते हैं, देखो! दया, वह धर्म भगवान ने कहा है। समन्तभद्राचार्य ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। छह काय की दया, वह अहिंसा परम धर्म है।

मुमुक्षु : छह काय में स्वयं आया या स्वयं रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं आवे, तब तो रागरहित हो गया वह तो। लो, यह पहली गाथा अहिंसाव्रत और मुनि की अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा में ऐसा एक शुभभाव प्रयत्नपूर्वक होता है, बस इतना। उसमें भी ऐसा आता है (कि) प्रयत्न से जानना। योगसार में (आता है)। षट्द्रव्य को प्रयत्न से जानना, ऐसा आता है। व्यवहार से आवे न!

मुमुक्षु : दोनों हैं अवश्य न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है। जाननेयोग्य वस्तु नहीं?

ऐसा वीतरागमार्ग जिसमें भगवान स्वयं तो आनन्दस्वरूप है, परन्तु जिसमें आनन्द उसका आश्रय करके प्रगट हुआ, वह आनन्द की दशा ही जैनधर्म है। आहाहा! कथन की गजब पद्धति है न! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और वह वीतरागी परिणति आनन्ददायक हुई, उसे जैनधर्म कहते हैं। ऐसा कहकर अहिंसाव्रत का विकल्प वहाँ होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। आदरनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)